[2019] 3 उम. नि. प. 428

तुलसीधर और एक अन्य

बनाम

नारायणप्पा और अन्य

[2010 की सिविल अपील सं. 784]

1 मई, 2019

न्यायमूर्ति एल. नागेश्वर राव और न्यायमूर्ति एम. आर. शाह

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 133 [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 और संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 54] – अपील – संयुक्त कुटुम्ब संपत्ति का विक्रय – विक्रय के पूर्व संपत्ति का विभाजन नहीं होना – विक्रय करने के पूर्व संपत्ति के अन्य दावेदारों/हिस्सेदारों की सहमति नहीं लेना – विक्रय विलेख को चुनौती देना – यदि किसी ऐसी संपत्ति का विक्रय किया जाता है जो संयुक्त कुटुम्ब की अविभाजित संपत्ति है और उस संपत्ति का विक्रय करने के पूर्व उस संपत्ति के अन्य दावेदारों/हिस्सेदारों की सहमति नहीं ली जाती है तो ऐसा विक्रय, रजिस्ट्रीकृत होने के बावजूद भी उस कुटुम्ब के अन्य दावेदारों/हिस्सेदारों पर आबद्धकर नहीं होगा ।

वर्तमान अपील के मुख्य तथ्य संक्षिप्तत: यह है कि प्रत्यर्थी - इसमें के मूल वादी (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'मूल वादी' कहा गया है) ने मुंशीफ न्यायालय और जेएमएफसी, गुब्बी (विद्वान् सिविल न्यायाधीश), कनिष्ठ खंड, गुब्बी के समक्ष एक वाद 1984 की मूल वाद सं. 141 संस्थित की थी, जिसमें उसने अपने पक्ष में इस प्रभाव का निर्णय और डिक्री पारित करने की प्रार्थना की थी कि उसे वाद अनुसूचित संपत्ति का स्वामी घोषित किया जाए और वाद अनुसूची संपत्ति में उसके शांतिपूर्ण कब्जे और उपभोग में हस्तक्षेप करने से अपीलार्थियों - इसमें के मूल प्रतिवादियों (जिन्हें इसमें इसके पश्चात 'मूल प्रतिवादियों' कहा गया है) को अवरुद्ध करते हुए, स्थायी व्यादेश के लिए भी प्रार्थना की थी । दोनों पक्षकारों ने दोनों मौखिक के साथ ही दस्तावेजी साक्ष्यों

को प्रस्तुत किया । विरोधी पक्षकारों की ओर से किए गए निवेदनों और साक्ष्यों का मूल्यांकन करने के पश्चात्, विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि तारीख 23 अप्रैल, 1971 को कुटुम्ब के बीच विभाजन हुआ था और उसके लिए विद्वान् विचारण न्यायालय ने मत व्यक्त किया और यह अभिनिर्धारित किया कि प्रदर्श डी-4 (तारीख 23 अप्रैल, 1971 का विभाजन विलेख) साक्ष्य में ग्राह्य है । विद्वान् विचारण ने यह भी मत व्यक्त किया और यह अभिनिर्धारित कि वाद संपत्ति, विभाजन के समय पर उपलब्ध थी । विद्वान् विचारण ने यह भी मत व्यक्त किया और यह अभिनिर्धारित किया कि प्रदर्श पी-1 (मूल वादी द्वारा अवलंब लिया गया विक्रय विलेख) मात्र एक सांकेतिक विक्रय विलेख था और न कि विक्रय विलेख क्योंकि प्रदर्श पी-1 ऋण के लिए प्रतिभूति के रूप में निष्पादित हुआ था और यह कभी-भी वाद संपत्ति के विक्रय के लिए आशयित नहीं था । विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया और यह अभिनिर्धारित किया कि वाद संपत्ति को वर्ष 1948 में 400/- रुपए की रकम के एवज में स्व. कृषनप्पा द्वारा क्रय किया गया था और इसके पश्चात् इसे 16 वर्षों के पश्चात् अर्थात् 1964 में 200/- रुपए के प्रतिफल में विक्रय किया जाना कथित किया गया है जो अत्यधिक असंभाव्य है । विद्वान् विचारण न्यायालय ने एक विनिर्दिष्ट निष्कर्ष भी अभिलिखित किया कि वाद में तात्विक तथ्यों को छिपाया गया है जो वादी के दुर्भावनापूर्ण आशय को दर्शित करता है । विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि वादी ने अभि. सा. 2 के साथ दुरभिसंधि करके अपने पक्ष में मिथ्या दस्तावेज निष्पादित कराया था । ऐसा अभिनिर्धारित करते हुए और उपर्युक्त निष्कर्षों को अभिलिखित करते हुए, विद्वान् विचारण न्यायालय ने वाद खारिज कर दिया । विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय ने मूल वादी द्वारा प्रस्तुत अपील को खारिज कर दिया और वाद खारिज करते हुए, विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री की पुष्टि कर दिया । विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय ने अपील खारिज करते हुए, यह मत व्यक्त किया कि प्रदर्श डी-4 को एक विभाजन विलेख नहीं कहा जा सकता है और इसे संपत्तियों को विभाजित करने की एक सूची मात्र कहा जा सकता है और यह अचल संपत्ति में न तो कोई अधिकार सृजित करता है अथवा न ही निर्वापित करता है और इसलिए, यह आवश्यक

रूप से रजिस्ट्री किए जाने योग्य दस्तावेज नहीं है और इसलिए, प्रदर्श डी-4 साक्ष्य में ग्राह्य है । विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री जिसकी पुष्टि प्रथम अपील न्यायालय द्वारा की गई थी, से व्यथित और असंतुष्ट महसूस करते हुए, मूल वादी ने उच्च न्यायालय के समक्ष 2001 की नियमित द्वितीय अपील सं. 1033 फाइल की । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा उक्त अपील को मंजूर कर लिया और दोनों निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित तथ्यों के निष्कर्षों में हस्तक्षेप किया और परिणामतः, वाद डिक्री कर दिया यह अभिनिर्धारित करते हुए कि प्रदर्श डी-4 रजिस्ट्रीकृत होना अपेक्षित था और इसलिए, वह साक्ष्य में अग्राह्य था । उच्च न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया और यह अभिनिर्धारित किया कि दोनों निचले न्यायालय यह अभिनिर्धारित करने में न्यायानुमत नहीं थे कि दस्तावेज - प्रदर्श पी-1 मात्र एक सांकेतिक विक्रय विलेख था और यह कि उस पर कार्यवाही नहीं की जा सकती थी । उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश से व्यथित और असंतुष्ट महसूस करते हुए, मूल प्रतिवादी ने वर्तमान अपील प्रस्तुत की है । न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – विचारण न्यायालय के साथ ही प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों का परिशीलन करने से यह प्रतीत होता है कि दोनों विचारण न्यायालय के साथ ही प्रथम अपील न्यायालय ने अभिलेख पर के साक्ष्य का मूल्यांकन करते हुए तर्कपूर्ण कारण दिए हैं, विशिष्टतया, तारीख 22 जून, 1964 के विक्रय विलेख (प्रदर्श पी-1) तारीख 23 अप्रैल, 1971 का दस्तावेज (प्रदर्श डी-4) और तारीख 18 मई, 1973 का पश्चात्वर्ती विक्रय विलेख (प्रदर्श पी-2) और इसके पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया है कि वादी यह घोषणा पाने का हकदार नहीं है कि वह स्वामी हो गया है । दोनों निचले न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री में हस्तक्षेप करने से, यह प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने पुनः अभिलेख पर के संपूर्ण साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन किया है जो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए, उसे अनुज्ञेय नहीं है । इन परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय ने दोनों निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों को अभिखंडित और

अपास्त करने में गंभीर/प्रकट त्रुटि कारित की है, जो अभिलेख पर के साक्ष्य के मूल्यांकन पर आधारित है । उच्च न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए, अपनी अधिकारिता के बाहर कार्य किया है । अन्यथा भी, गुणागुणों पर भी अपील मंजूर करते हुए, उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश और परिणामत: वाद डिक्री करने को कायम नहीं रखा जा सकता है । मूल वादी का पक्षकथन यह था कि वाद संपत्ति का विक्रय तारीख 22 जून, 1964 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख (प्रदर्श पी-1) द्वारा वादी के साथ उसके दोनों भाइयों और उनके पिता नजप्पा ने सिद्दालिंगप्पा के पक्ष में किया था तत्पश्चात्, जिससे (सिद्दालिंगप्पा से) वादी ने तारीख 18 मई, 1973 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख (प्रदर्श पी-2) के अधीन वाद संपत्ति का क्रय किया था । दूसरी ओर, प्रतिवादियों का यह विनिर्दिष्ट पक्षकथन है कि तारीख 22 जून, 1964 का विक्रय विलेख एक सांकेतिक विक्रय विलेख था और उस पर कभी भी कार्रवाई नहीं हुई थी और इस प्रकार, उस पर किसी भी प्रकार से कार्य नहीं किया जा सकता था । प्रतिवादियों का यह भी पक्षकथन था कि इसके पश्चात् वर्ष 1971 में विभाजन हुआ था और उसे तारीख 23 अप्रैल, 1971 के दस्तावेज (प्रदर्श डी-4) के द्वारा लिखित में लेखबद्ध किया गया था और उस दस्तावेज के अधीन यह अभिलिखित किया गया था कि वाद संपत्ति कृषनप्पा के पक्ष में चली गई थी । वादी ने लिखित में लेखबद्ध किसी विभाजन से इनकार किया, विशिष्टतया, तारीख 23 अप्रैल, 1971 के प्रदर्श डी-4 के प्ररूप में । उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया और यह अभिनिर्धारित किया कि वादी के पक्ष में निष्पादित रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख को ध्यान में रखते हुए, वादी असली स्वामी हो गया है । उच्च न्यायालय ने अपील मंजूर कर लिया और तत्पश्चात् वाद डिक्री कर दिया । जहां तक रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख (प्रदर्श पी-1) का संबंध है, यह एक स्वीकृत प्रास्थिति है कि कृषनप्पा उक्त विक्रय विलेख का एक हस्ताक्षरकर्ता नहीं है । इसलिए, इस प्रकार, उक्त विक्रय विलेख कृषनप्पा पर आबद्धकर नहीं है । मूल वादी ने प्रतिपरीक्षा में भी यह स्वीकार किया है कि प्रदर्श पी-1 पर कृषनप्पा ने हस्ताक्षर नहीं किया था । उसने यह भी स्वीकार किया है कि उसके अन्य भाइयों रंगप्पा और गोविंदैय्या ने भी हस्ताक्षर नहीं किए

थे । अभिलेख पर के संपूर्ण साक्ष्य से, यह प्रतीत होता है कि वाद संपत्ति, आरंभत: वर्ष 1948 में कृषनप्पा द्वारा क्रय की गई थी और उसके पश्चात् उक्त वाद संपत्ति के संबंध में कुछ आंतरिक कुटुम्ब समस्याओं के कारण कृषनप्पा ने ही वर्ष 1952 में उस संपत्ति को संयुक्त कुटुम्ब संपत्ति में सम्मिलित कर लिया था और कृषनप्पा ने अपने पिता ननजप्पा के पक्ष में विक्रय विलेख निष्पादित किया था, यह कथन करते हुए कि यह संयुक्त कुटुम्ब संपत्ति से संबंधित है । अभिलेख पर के संपूर्ण साक्ष्य से, यह प्रतीत होता है कि विक्रय विलेख प्रदर्श पी-1 पर भी कार्रवाई नहीं हुई थी । वर्ष 1964 से वर्ष 1971 के बीच सिद्दालिंगप्पा का नाम राजस्व अभिलेख में नामांतरित/अभिलिखित नहीं हुआ था । दोनों निचले न्यायालयों ने पूर्वोक्त पहलू पर सविस्तार विचार किया था जिसे उच्च न्यायालय द्वारा उलट दिया गया है । यह उल्लिखित किया जाना अपेक्षित है कि मूल वादी प्रतिपरीक्षा में भी तारीख 22 जून, 1964 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख (प्रदर्श पी-1) को ध्यान में रखते हुए, पारिश्रमिक के रूप में सिद्दालिंगप्पा से प्राप्त विक्रय प्रतिफल के बारे में निश्चित नहीं था । अन्यथा भी, वादी के अनुसार भी और अभिलेख पर के सामग्रियों पर विचार करने से भी क्योंकि वाद भूमि एक संयुक्त संपत्ति थी और/अथवा ननजप्पा के नाम में थी, इसलिए, सभी भाइयों का उसमें समान हिस्सा था और इसलिए, ननजप्पा द्वारा वादी और अन्य दो भाइयों और अन्य भाइयों जिनमें कृषनप्पा सम्मिलित है, की सहमति के बिना वाद संपत्ति का विक्रय नहीं किया जा सकता था जब तक कि संपत्ति का विभाजन नहीं हो जाता । मूल वादी ने प्रतिपरीक्षा में विनिर्दिष्टत: यह स्वीकार किया है कि वर्ष 1965-66 में, जब उसके पिता ने उक्त वाद अनुसूचित संपत्ति का विक्रय किया था तब उस समय पर उसके भाइयों के बीच विभाजन नहीं हुआ था । इन परिस्थितियों में, तारीख 22 जून, 1964 का रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख (प्रदर्श पी-1) जिसके द्वारा वाद संपत्ति का विक्रय सिद्दालिंगप्पा को की गई थी, कृषनप्पा पर आबद्धकर नहीं हो सकती है । यह एक ऐसा रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख था जिस पर कोई कार्रवाई नहीं हुई थी । वादी और सिद्दालिंगप्पा ने भी वर्ष 1973 में सिद्दालिंगप्पा के नाम में नामांतरण कराने की कोशिश की थी जो राजस्व प्राधिकारी की विषयवस्तु थी । जहां तक वादी के इस निवेदन का संबंध है कि क्योंकि तारीख 22

जून, 1964 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख (प्रदर्श पी-1) को वाद या प्रतिदावा के माध्यम से भी प्रतिवादी द्वारा चुनौती नहीं दी गई थी और इसलिए, इसके पश्चात्, उसे चुनौती देने के लिए प्रतिवादियों के पास कोई विकल्प खुला नहीं है, जहां तक उसका संबंध है, प्रारंभ में ही यह उल्लिखित किया जाना अपेक्षित है और जैसा इसमें उपर्युक्त मत व्यक्त किया गया है, कृषनप्पा उक्त दस्तावेज/विक्रय विलेख का हस्ताक्षरकर्ता नहीं था और इसलिए, यह उस पर या उसके उत्तराधिकारियों पर आबद्धकर नहीं हो सकता है । मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, न्यायालय की यह राय है कि स्वतंत्र कार्यवाहियों के माध्यम से विक्रय विलेख (प्रदर्श पी-1) को चुनौती दिए बिना भी वादी द्वारा फाइल वाद में, यह घोषणा करने की ईप्सा की जा सकती है कि वह रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख के अनुसरण में, स्वामी हो गया है, उस प्रतिवादी जो विक्रय विलेख में पर-व्यक्ति है, के लिए यह हमेशा ही खुला होता है कि वह यह अभिवाक् उद्भूत कर सके कि विक्रय विलेख उस पर आबद्धकर नहीं है या वह बिना प्रतिफल के है या वह एक सांकेतिक विक्रय विलेख था अथवा शून्य या तुच्छ, उस मामले के लिए दुरभिसंधि पूर्ण था और उस पर कार्रवाई किया जाना आशयित नहीं था । जहां तक उच्च न्यायालय द्वारा अभिलिखित इस निष्कर्ष का कि क्योंकि तारीख 23 अप्रैल, 1971 का विभाजन विलेख (प्रदर्श डी-4) अरजिस्ट्रीकृत था, यद्यपि, इसका रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 के उपबंधों के अधीन रजिस्ट्रीकरण किया जाना अपेक्षित था और इसलिए, वह साक्ष्य में ग्राह्य नहीं है, का संबंध है, यह उल्लिखित किया जाना अपेक्षित है कि चूंकि प्रदर्श डी-4 को पालुपट्टी के रूप में कहा जा सकता है जैसा कि पालुपट्टी के रूप में वर्णित किया गया है । पालुपट्टी का अभिप्राय विभाजित संपत्तियों की सूची से है । अधिकतर, इसे कुटुम्ब व्यवस्थापन के रूप में कहा जा सकता है । इसलिए, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, इसे रजिस्ट्रीकृत किया जाना अपेक्षित नहीं था । यह उल्लिखित किया जाना अपेक्षित है कि तारीख 23 अप्रैल, 1971 का विलेख जिसके अधीन वाद संपत्ति कृषनप्पा के पक्ष में गई थी/न्यायगत हुई थी, पंचायत और पंचों के समक्ष लिखित में लेखबद्ध किया गया था और उस पर ग्रामवालों/पंचायतवालों और कुटुम्ब के सभी सदस्यों, जिसमें वादी भी सम्मिलित था, द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे । यद्यपि, वादी ने यह विवादित किया है कि विभाजन,

दस्तावेज प्रदर्श डी-4 के प्ररूप में लिखित में लेखबद्ध नहीं हुआ था, जो अभिलेख पर के संपूर्ण साक्ष्यों पर विचार करने और वादी के अभिसाक्ष्य (प्रतिपरीक्षा) से भी जिसमें उसने यह विनिर्दिष्टत: स्वीकार किया है कि वर्ष 1971 में मौखिक विभाजन हुआ था, से स्पष्ट होता है । उसने यह भी स्वीकार किया है कि उसने वह हिस्सा प्राप्त किया है जिसका वर्णन तारीख 23 अप्रैल, 1971 के दस्तावेज (प्रदर्श डी-4) में किया गया है । तारीख 23 अप्रैल, 1971 के दस्तावेज/विभाजन विलेख/पालुपट्टी के निष्पादन को विभिन्न साक्षियों की परीक्षा द्वारा सिद्ध और साबित किया गया है । उच्च न्यायालय ने तारीख 23 अप्रैल, 1971 के उक्त दस्तावेज (प्रदर्श डी-4) को देखने और/या विचार करने से एकमात्र इस आधार पर इनकार कर दिया था कि इसका रजिस्ट्रीकरण किया जाना अपेक्षित था और इसलिए, क्योंकि यह अरजिस्ट्रीकृत है, इसलिए, इस पर विचार नहीं किया जा सकता है तथापि, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा काले वाले मामले में, मत व्यक्त किया गया है कि ऐसा कुटुम्ब व्यवस्थापन, यद्यपि, रजिस्ट्रीकृत नहीं है, तो भी वह ऐसे कुटुम्ब व्यवस्थापन के पक्षकारों के विरुद्ध पूर्णत: विबंधन के रूप में प्रवर्तित होगा । जैसा कि इसमें उपर्युक्त मत व्यक्त किया गया है कि वादी ने भी सुस्पष्टत: यह स्वीकार किया है कि तारीख 23 अप्रैल, 1971 को मौखिक विभाजन हुआ था और उसने यह भी स्वीकार किया है कि तीन से चार पंचायत के लोग भी उपस्थित थे । तथापि, उसके अनुसार, उसे लिखित में लेखबद्ध नहीं किया गया था । इसलिए, वादी के इस पक्षकथन को स्वीकार करते हुए भी कि तारीख 23 अप्रैल, 1971 का एक मौखिक विभाजन हुआ था जो तारीख 23 अप्रैल, 1971 का दस्तावेज प्रदर्श डी-4 है, जिसका वह भी हस्ताक्षरकर्ता है और अन्य सभी कुटुम्ब सदस्य भी उसके हस्ताक्षरकर्ता हैं, को संपत्तियों के विभाजन की सूची के रूप में कहा जा सकता है । प्रत्येक व्यक्ति, मौखिक विभाजन/विभाजन के अनुसार ही अधिकार/हिस्से प्राप्त करता है । इसलिए, उसका भी उसके अधीन व्यवस्थापन और पक्षकारों के आचरण को स्पष्टीकरण करने के लिए संपोषक साक्ष्य के रूप में प्रयोग किया जा सकता है । इसलिए, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय ने तारीख 23 अप्रैल, 1971 के दस्तावेज प्रदर्श डी-4 का परिशीलन नहीं करके और विचार नहीं करके गंभीर त्रुटि कारित की है । जहां तक सिद्दालिंगप्पा द्वारा वादी के पक्ष में

निष्पादित तारीख 18 मई, 1973 के विक्रय विलेख (प्रदर्श पी-2) का संबंध है, जैसा कि दोनों निचले न्यायालयों ने यह सुस्पष्टत: निष्कर्ष निकाला है कि वह दस्तावेज मिथ्या है । यह उल्लिखित किया जाना अपेक्षित है प्रतिपरीक्षा में, वादी ने यह कथन किया है कि उसने सिद्दालिंगप्पा को 3,000/- रुपए से 4,000/- रुपए संदत्त किया था और उक्त संपत्ति को उसके द्वारा वर्ष 1973 में क्रय की गई थी । तथापि, दस्तावेज में विक्रय प्रतिफल को 200/- रुपए कहा गया है । अभि. सा. 2 सिद्दालिंगप्पा ने भी यह कथन किया है कि उसने 200/- रुपए में वाद अनुसूचित संपत्ति क्रय की थी और उसने 600/- रुपए में उक्त वाद अनुसूचित संपत्ति का विक्रय कर दिया था । इसलिए, वादी द्वारा संदत्त प्रतिफल और सिद्दालिंगप्पा द्वारा प्राप्त प्रतिफल के संबंध में एक गंभीर विवाद है । मामले के पूर्वोक्त तथ्यों और परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय, दोनों निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने में न्यायोचित नहीं था । उपर्युक्त कथित कारणों से, उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश को कायम नहीं रखा जा सकता है और वह अभिखंडित और अपास्त किए जाने योग्य है और तद्नुसार, उसे अभिखंडित और अपास्त किया जाता है । (पैरा 8, 9, 9.1, 9.2, 9.3, 9.4, 9.5, 9.6 और 10)

अवलंबित निर्णय

पैरा

[1976] (1976) 3 एस. सी. सी. 119 :
काले और अन्य बनाम **उप-चकबंदी निदेशक और अन्य** । 4, 9.4

निर्दिष्ट निर्णय

[2018] (2018) 14 एस. सी. सी. 814 :
रोशन सिंह और अन्य बनाम **जिले सिंह और अन्य** ; 5.6

[2016] (2016) 8 एस. सी. सी. 705 :
सुब्राय एम. एन. बनाम **वित्तल एम. एन. और अन्य** ; 5.5, 9.5

[2009] (2009) 4 एस. सी. सी. 193 :
कालियापेरुमल्ल बनाम **राजगोपाल और एक अन्य** ; 5.10

[2002] (2002) 1 एस. सी. सी. 434 :
ईश्वर दास जैन बनाम **सोहन लाल** ; 7.3

[1999] (1999) 3 एस. सी. सी. 722 :
कोंडिबा दगदू कदम बनाम **सावित्री बाई सोपान गुजर** ; 7.2

[1999] (1999) 3 एस. सी. सी. 573 :
विद्याधर बनाम **माणिकराव और एक अन्य** ; 5.12, 9.2

[1973] (1973) 2 एस. सी. सी. 312 :
एस. शानमुगम पिल्लई और अन्य बनाम
के. शानमुगम पिल्लई और अन्य । 9.4

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2010 की सिविल अपील सं. 784.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 133 के अधीन अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सुश्री किरण सूरी, ज्येष्ठ अधिवक्ता, सुश्री ऐश्वर्या कुमारी, श्री एस. जे. स्मिथ, सुश्री रीतिका गंभीर कोहली, डा. (श्रीमती) विपीन गुप्ता, अधिवक्तागण

प्रत्यर्थियों की ओर से सुश्री के. वी. भारती उपाध्याय

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एम. आर. शाह ने दिया ।

न्या. शाह – मूल प्रतिवादियों द्वारा वर्तमान अपील, कर्नाटक उच्च न्यायालय, बंगलुरु द्वारा 2001 की नियमित द्वितीय अपील सं. 1033 में पारित तारीख 25 जुलाई, 2007 के आक्षेपित निर्णय और आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर फाइल की गई है, जिसके द्वारा कर्नाटक उच्च न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए प्रत्यर्थी, इसमें के मूल वादी द्वारा प्रस्तुत उक्त अपील को मंजूर कर लिया था और वाद खारिज करते हुए, दोनों निचले न्यायालयों द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को अभिखंडित और अपास्त कर दिया था और परिणामत:, वाद डिक्री कर दिया था ।

2. वर्तमान अपील के मुख्य तथ्य संक्षिप्तत: निम्नलिखित है :-

कि प्रत्यर्थी - इसमें के मूल वादी (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'मूल

वादी' कहा गया है) ने मुंशीफ न्यायालय और जेएमएफसी, गुब्बी (विद्वान् सिविल न्यायाधीश), कनिष्ठ खंड, गुब्बी के समक्ष एक वाद 1984 की मूल वाद सं. 141 संस्थित की थी, जिसमें उसने अपने पक्ष में इस प्रभाव का निर्णय और डिक्री पारित करने की प्रार्थना की थी कि उसे वाद अनुसूचित संपत्ति का स्वामी घोषित किया जाए और वाद अनुसूची संपत्ति में उसके शांतिपूर्ण कब्जे और उपभोग में हस्तक्षेप करने से अपीलार्थियों – इसमें के मूल प्रतिवादियों (जिन्हें इसमें इसके पश्चात् 'मूल प्रतिवादियों' कहा गया है) को अवरुद्ध करते हुए, स्थायी व्यादेश के लिए भी प्रार्थना की थी । मूल वादी का पक्षकथन यह था कि वह रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख के अधीन वाद संपत्ति का क्रय करने के नाते उसका स्वामी हो गया है और इसलिए प्रतिवादियों को वाद अनुसूचित संपत्ति के शांतिपूर्ण कब्जे और उपभोग करने के उसके अधिकार, जो भी हो, में कोई हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है । वाद का प्रतिवादियों द्वारा लिखित कथन फाइल करते हुए विरोध किया गया । प्रतिवादियों का पक्षकथन यह था कि प्रतिवादी सं. 1 का पति और प्रतिवादी सं. 2 और 3 का पिता अर्थात् ए. एन. कृषनप्पा (मृत) ने वाद संपत्ति को 400/- रुपए के प्रतिफल के एवज में एक रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख के अधीन तारीख 12 दिसम्बर, 1948 को क्रय किया था । कि वाद संपत्ति को उसके द्वारा संयुक्त कुटुम्ब संपत्तियों के रूप में धारित थी । कि इसके पश्चात्, मृतक ननजप्पा के पुत्रों के बीच विभाजन हुआ जो तारीख 23 अप्रैल, 1973 को अभिलिखित हुआ था और वाद संपत्ति मृतक ए. एन. कृषनप्पा के हिस्से में आ गई थी । प्रतिवादियों का यह भी पक्षकथन था कि वे वाद संपत्ति के कब्जे का उपभोग कर रहे हैं । प्रतिवादियों का पक्षकथन यह भी था कि वादी के पक्ष में प्रतिवादियों द्वारा कोई विक्रय विलेख निष्पादित नहीं किया गया है और अभिकथित विक्रय विलेख वादियों द्वारा कूटरचित है ।

2.1 कि विद्वान् विचारण न्यायालय ने निम्नलिखित विवाद्यकों को विरचित किया :–

> "(i) क्या वादी ने वाद अनुसूचित संपत्ति में अपना हक साबित कर दिया है ?

(ii) क्या वादी ने वाद की तारीख पर वाद अनुसूचित संपत्ति में अपने विधिपूर्ण कब्जे को साबित कर दिया है ?

(iii) क्या वादी ने वाद संपत्ति के उसके कब्जे में प्रतिवादी द्वारा हस्तक्षेप साबित कर दिया है ?

2.2 कि दोनों पक्षकारों ने दोनों मौखिक के साथ ही दस्तावेजी साक्ष्यों को प्रस्तुत किया । कि विरोधी पक्षकारों की ओर से किए गए निवेदनों और साक्ष्यों का मूल्यांकन करने के पश्चात्, विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि तारीख 23 अप्रैल, 1971 को कुटुम्ब के बीच विभाजन हुआ था और उसके लिए विद्वान् विचारण न्यायालय ने मत व्यक्त किया और यह अभिनिर्धारित किया कि प्रदर्श डी-4 (तारीख 23 अप्रैल, 1971 का विभाजन विलेख) साक्ष्य में ग्राह्य है । विद्वान् विचारण ने यह भी मत व्यक्त किया और यह अभिनिर्धारित कि वाद संपत्ति, विभाजन के समय पर उपलब्ध थी । विद्वान् विचारण ने यह भी मत व्यक्त किया और यह अभिनिर्धारित किया कि प्रदर्श पी-1 (मूल वादी द्वारा अवलंब लिया गया विक्रय विलेख) मात्र एक सांकेतिक विक्रय विलेख था और न कि विक्रय विलेख क्योंकि प्रदर्श पी-1 ऋण के लिए प्रतिभूति के रूप में निष्पादित हुआ था और यह कभी भी वाद संपत्ति के विक्रय के लिए आशयित नहीं था । विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया और यह अभिनिर्धारित किया कि वाद संपत्ति को वर्ष 1948 में 400/- रुपए की रकम के एवज में स्व. कृषनप्पा द्वारा क्रय किया गया था और इसके पश्चात् इसे 16 वर्षों के पश्चात् अर्थात् 1964 में 200/- रुपए के प्रतिफल में विक्रय किया जाना कथित किया गया है जो अत्यधिक असंभाव्य है । विद्वान् विचारण न्यायालय ने एक विनिर्दिष्ट निष्कर्ष भी अभिलिखित किया कि वाद में तात्विक तथ्यों को छिपाया गया है जो वादी के दुर्भावनापूर्ण आशय को दर्शित करता है । विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि वादी ने अभि. सा. 2 के साथ दुरभिसंधि करके अपने पक्ष में मिथ्या दस्तावेज निष्पादित कराया था । ऐसा अभिनिर्धारित करते हुए और उपर्युक्त निष्कर्षों को अभिलिखित करते हुए, विद्वान् विचारण न्यायालय ने वाद खारिज कर

दिया । विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय ने मूल वादी द्वारा प्रस्तुत अपील को खारिज कर दिया और वाद खारिज करते हुए, विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री की पुष्टि कर दी । विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय ने अपील खारिज करते हुए, यह मत व्यक्त किया कि प्रदर्श डी-4 को एक विभाजन विलेख नहीं कहा जा सकता है और इसे संपत्तियों को विभाजित करने की एक सूची मात्र कहा जा सकता है और यह अचल संपत्ति में न तो कोई अधिकार सृजित करता है अथवा न ही निर्वापित करता है और इसलिए, यह आवश्यक रूप से रजिस्ट्री किए जाने योग्य दस्तावेज नहीं है और इसलिए, प्रदर्श डी-4 साक्ष्य में ग्राह्य है ।

3. विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री जिसकी पुष्टि प्रथम अपील न्यायालय द्वारा की गई थी, से व्यथित और असंतुष्ट महसूस करते हुए, मूल वादी ने उच्च न्यायालय के समक्ष 2001 की नियमित द्वितीय अपील सं. 1033 फाइल की । उच्च न्यायालय ने मात्र एक विधि का सारवान् प्रश्न विरचित किया जो निम्नलिखित है :–

> "क्या अपीलार्थी, स्वामी है और वाद भूमि के कब्जे में है, क्योंकि उसने इसे वर्ष 1973 में क्रय किया था, जिसे तारीख 23 अप्रैल, 1971 के पश्चात् जब प्रदर्श डी-1 - विभाजन विलेख - पालुपट्टी का अस्तित्व में आना अभिकथित किया गया है ?"

3.1 कि उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा उक्त अपील को मंजूर कर लिया और दोनों निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित तथ्यों के निष्कर्षों में हस्तक्षेप किया और परिणामतः, वाद डिक्री कर दिया यह अभिनिर्धारित करते हुए कि प्रदर्श डी-4 रजिस्ट्रीकृत होना अपेक्षित था और इसलिए, वह साक्ष्य में अग्राह्य था । उच्च न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया और यह अभिनिर्धारित किया कि दोनों निचले न्यायालय यह अभिनिर्धारित करने में न्यायानुमत नहीं थे कि दस्तावेज - प्रदर्श पी-1 मात्र एक सांकेतिक विक्रय विलेख था और यह कि उस पर कार्यवाही नहीं की जा सकती थी ।

3.2 उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश से व्यथित और असंतुष्ट महसूस करते हुए, मूल प्रतिवादी ने वर्तमान अपील प्रस्तुत की है ।

4. अपीलार्थियों – मूल प्रतिवादियों की ओर से सुश्री किरण सूरी, विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता और प्रत्यर्थी – मूल वादी और मूल वादी की पत्नी और पुत्र (नए रूप से जोड़े गए प्रत्यर्थियों), जिन्हें इस न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थियों के रूप में पक्षकार बनाए जाने की अनुज्ञा दी गई थी, की ओर से सुश्री के. वी. भारती उपाध्याय, विद्वान् अधिवक्ता उपस्थित हुए ।

5. मूल प्रतिवादियों के विद्वान ज्येष्ठ काउंसेल सुश्री किरण सूरी ने यह जोरदार तरीके से निवेदन किया कि उच्च न्यायालय ने दोंनो निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित समवर्ती तथ्यों के निष्कर्ष में हस्तक्षेप करके सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपनी अधिकारिता के बाहर कार्य किया है ।

5.1 मूल प्रतिवादियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल सुश्री किरण सूरी द्वारा यह भी निवेदन किया गया कि वस्तुत:, इस प्रकार, उच्च न्यायालय द्वारा विरचित विधि के सारवान् प्रश्न को किसी भी प्रकार से विधि का सारवान् प्रश्न नहीं कहा जा सकता है और उसे तथ्य का प्रश्न भी नहीं कहा जा सकता है । यह निवेदन किया कि इसलिए, उच्च न्यायालय ने तथ्य के प्रश्न में हस्तक्षेप करके और निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित तथ्यों के समवर्ती निष्कर्ष में तद्द्वारा, हस्तक्षेप करके अपनी अधिकारिता में गंभीर त्रुटि और/या अपनी अधिकारिता के बाहर कार्य कारित किया है ।

5.2 मूल प्रतिवादियों के विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता सुश्री किरण सूरी द्वारा यह भी निवेदन किया गया कि उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने में गंभीर त्रुटि कारित की है कि प्रदर्श डी-4 का रजिस्ट्रीकरण अपेक्षित है जबकि दोनों निचले न्यायालयों ने स्पष्टत: यह अभिलिखित किया था कि प्रदर्श डी-4 का कोई रजिस्ट्रीकरण होना अपेक्षित नहीं है ।

5.3 मूल प्रतिवादियों के विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता सुश्री किरण

सूरी द्वारा यह भी निवेदन किया गया कि उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त करने और अभिनिर्धारित करने में गंभीर त्रुटि कारित की है कि क्योंकि प्रदर्श डी-4 एक अरजिस्ट्रीकृत दस्तावेज था और इसलिए, यह साक्ष्य में ग्राह्य नहीं था ।

5.4 मूल प्रतिवादियों के विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता सुश्री किरण सूरी द्वारा यह जोरदार निवेदन किया गया कि यदि यह उपधारणा कि प्रदर्श डी-4 का रजिस्ट्रीकरण अपेक्षित था और वह अरजिस्ट्रीकृत था तो उस दशा में भी उस दस्तावेज का प्रयोग हो सकता था और साम्पार्श्विक प्रयोजन के लिए विचार किया जा सकता था । यह निवेदन किया गया कि अन्यथा भी और जैसा कि **काले और अन्य** बनाम **उप-चकबंदी निदेशक और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है, यद्यपि, कुटुम्ब बंदोबस्त को रजिस्ट्रीकृत नहीं किया गया है तो भी यह उस मूल वादी के विरुद्ध पूर्ण विबंधन के रूप में प्रवर्तित होगा जो ऐसे कुटुम्ब बंदोबस्त का पक्षकार था । यह निवेदन किया गया कि इसलिए, उच्च न्यायालय ने विबंधन के सिद्धांत को प्रभावी नहीं करने में विधि की गंभीर त्रुटि कारित की है ।

5.5 **सुब्राय एम. एन.** बनाम **वित्तल एम. एन. और अन्य**[2] वाले मामले में, इस न्यायालय के विनिश्चय का अवलंब लेते हुए, मूल प्रतिवादियों के विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता सुश्री किरण सूरी ने यह जोरदार निवेदन किया कि जैसा कि पूर्वोक्त विनिश्चय में इस न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है, जब कुटुम्ब समझौता/बंदोबस्त मौखिक रूप से किया गया है तो उसका रजिस्ट्रीकरण अपेक्षित नहीं होता है और वह साक्ष्य में ग्राह्य होता है, तथापि, जब वह लिखित में रजिस्ट्रीकरण होना आवश्यक हो तब उसके बिना यह साक्ष्य में ग्राह्य नहीं होता है । यह निवेदन किया कि तथापि, पूर्वोक्त विनिश्चय में, इस न्यायालय द्वारा यह भी मत व्यक्त किया गया और अभिनिर्धारत किया गया कि रजिस्ट्रीकरण किए बिना भी कुटुम्ब समझौता/बंदोबस्त के लिखित में लेखबद्ध दस्तावेज को उसके अधीन किए गए समझौते और

---

[1] (1976) 3 एस. सी. सी. 119.

[2] (2016) 8 एस. सी. सी. 705.

पक्षकारों के आचरण का स्पष्टीकरण करने के लिए पुष्टिकारक साक्ष्य के रूप में प्रयोग किया जा सकता है । यह निवेदन किया कि पूर्वोक्त विनिश्चय में इस न्यायालय द्वारा यह भी मत व्यक्त किया गया और अभिनिर्धारित किया गया कि कुटुम्ब समझौते का अरजिस्ट्रीकृत दस्तावेज का प्रयोग पक्षकारों के बीच किए गए समझौते/बंदोबस्त की प्रकृति का स्पष्टीकरण करने और कतिपय कुटुम्ब संपत्तियों में अपने हित का त्यजन के बदले में कुटुम्ब के प्रतिवादी सदस्यों से धन प्राप्त करने में वादी सदस्यों के आचरण का स्पष्टीकरण करने के लिए भी संपुष्टिकारक साक्ष्य के भाग के रूप में किया जा सकता है । यह निवेदन किया गया कि वर्तमान मामले में, तारीख 23 अप्रैल, 1971 के दस्तावेज डी-4 पर वस्तुत: सभी पक्षकारों द्वारा जिसमें वादी सम्मिलित है, कार्य किया गया था और इसलिए, यह उपधारणा कि दस्तावेज डी-4 का रजिस्ट्रीकरण अपेक्षित था, उस मामले में भी इसका संपुष्टिकारक साक्ष्य के रूप में प्रयोग किया जा सकता था ।

5.6 मूल प्रतिवादियों के विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता सुश्री किरण सूरी द्वारा यह निवेदन किया गया कि क्योंकि दस्तावेज डी-4 को विभाजन विलेख के रूप में नहीं कहा जा सकता है और इसे पक्षकारों को आबंटित संपत्तियों की सूची अंतर्विष्ट करने वाले दस्तावेज के रूप में कहा जा सकता है और इसलिए, इसका रजिस्ट्रीकृत होना अपेक्षित नहीं था । यह निवेदन किया कि इसलिए, उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने में गंभीर त्रुटि कारित की है कि क्योंकि प्रदर्श डी-4 एक अरजिस्ट्रीकृत दस्तावेज था, इसलिए, यह साक्ष्य में अग्राह्य था । अपने पूर्वोक्त निवेदनों के समर्थन में, उन्होंने **रोशन सिंह और अन्य** बनाम **जिले सिंह और अन्य**[1] वाले मामले में, इस न्यायालय के विनिश्चय का जोरदार अवलंब लिया है ।

5.7 मूल प्रतिवादियों के विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता सुश्री किरण सूरी द्वारा यह भी निवेदन किया गया कि उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने में गंभीर त्रुटि कारित की है कि वाद संपत्ति, वर्ष 1971 में संयुक्त कुटुम्ब के साथ वर्ष 1971 में विभाजन के लिए

---

[1] (2018) 14 एस. सी. सी. 814.

उपलब्ध नहीं थी । यह निवेदन किया कि ऐसा अभिनिर्धारित करके, उच्च न्यायालय ने इस तथ्य पर किसी भी प्रकार से विचार नहीं किया कि प्रदर्श पी-1, विक्रय विलेख जिसका वादी द्वारा अवलंब लिया गया था, एक सांकेतिक विक्रय विलेख था और प्रत्येक व्यक्ति इसको जानता था ।

5.8 मूल प्रतिवादियों के विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता सुश्री किरण सूरी द्वारा यह निवेदन किया गया है कि उच्च न्यायालय ने निचले न्यायालयों के इस निष्कर्ष में हस्तक्षेप करके गंभीर त्रुटि कारित की है कि प्रदर्श पी-1 मात्र प्रतिभूति के रूप में दर्शित हुआ है और यह विक्रय के लिए दस्तावेज नहीं है ।

5.9 मूल प्रतिवादियों के विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता सुश्री किरण सूरी द्वारा यह भी निवेदन किया गया है कि उच्च न्यायालय ने दोनों निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित तथ्यों के इन निष्कर्षों में हस्तक्षेप करके गंभीर त्रुटि कारित की है कि प्रदर्श पी-1 पर कार्य नहीं किया गया था । यह भी निवेदन किया गया कि दोनों निचले न्यायालयों ने क्रमश: अपने निष्कर्षों में, यह स्पष्टत: अभिलिखित किया है कि कब्जा प्रतिवादियों के पास बना हुआ था और विक्रय के लिए प्रतिफल प्रदर्श पी-1 अपर्याप्त था और इसलिए, हक का अंतरण नहीं हुआ था ।

5.10 अपीलार्थियों-मूल प्रतिवादियों के विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता सुश्री किरण सूरी द्वारा यह निवेदन किया गया कि जैसा कि **कालियापेरुमल्ल** बनाम **राजगोपाल और एक अन्य**[1] वाले मामले में, इस न्यायालय द्वारा मत व्यक्त किया गया है और अभिनिर्धारित किया गया है कि यद्यपि, रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 के अधीन विक्रय विलेख का रजिस्ट्रीकरण होने पर, विक्रय विलेख के निष्पादन की तारीख से साधारणतया, हक क्रेता का अंतरित हो जाता है किन्तु असली परीक्षण पक्षकारों का आशय होता है । यह निवेदन किया कि इस न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि रजिस्ट्रीकरण, प्रथमदृष्ट्या संपत्ति के अंतरण के आशय का सबूत होता है, किन्तु, यह प्रवर्तित

---

[1] (2009) 4 एस. सी. सी. 193.

अंतरण का सबूत नहीं होता है । यह निवेदन किया कि इस न्यायालय द्वारा यह भी मत व्यक्त किया गया है और अभिनिर्धारित किया गया है कि जहां विवरण अपर्याप्त या संदिग्ध हैं वहां साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 92 के उपबंधों के अधीन परिस्थितियों और पक्षकारों के आचरण को देखा जा सकता है ।

5.11 मूल प्रतिवादियों के विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता सुश्री किरण सूरी द्वारा यह निवेदन किया गया कि उच्च न्यायालय ने दोनों निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित तथ्यों के इन निष्कर्षों को अपास्त करने में अत्यधिक गंभीर त्रुटि कारित की है कि प्रदर्श पी-1 एक सांकेतिक विक्रय विलेख था । सुश्री किरण सूरी द्वारा यह जोरदार निवेदन किया गया कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय ने सभी परिस्थितियों और पक्षकारों के आशय, जो पक्षकारों के आचरण से उद्भूत हुआ है/प्रकट होता है, पर विचार किए बिना प्रदर्श पी-1 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख होने पर अत्यधिक जोर देने में गंभीर त्रुटि कारित की है ।

5.12 अब, जहां तक प्रतिवादियों द्वारा वाद फाइल करके विक्रय विलेख (प्रदर्श पी-1) को अपास्त करने की प्रार्थना नहीं करने का संबंध है, **विद्याधर** बनाम **माणिकराव और एक अन्य**[1] वाले मामले में, इस न्यायालय के विनिश्चय का अवलंब लेते हुए, यह जोरदार निवेदन किया गया है कि वादी द्वारा विक्रय विलेख के आधार पर उसे स्वामी घोषित करने के लिए फाइल वाद में, प्रतिवादी जो विक्रय विलेख में एक पर-व्यक्ति है, यह अभिवाक् उद्भूत कर सकता था कि विक्रय विलेख शून्य, तुच्छ, दुरभिसंधिपूर्ण है या उस पर कार्य करने का आशय नहीं था और/अथवा वह उस पर आबद्धकर नहीं था । यह निवेदन किया कि जैसा कि पूर्वोक्त विनिश्चय में इस न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है कि प्रतिवादी, वादी के वाद को विफल करने के लिए विधि के अधीन उसे उपलब्ध कोई भी विधिसम्मत अभिवाक् उद्भूत कर सकता है । यह निवेदन किया कि इसलिए, प्रतिवादी द्वारा विक्रय विलेख (प्रदर्श पी-1) को अपास्त करने और/अथवा विनिर्दिष्टतः, विक्रय विलेख (प्रदर्श पी-1) को अभिखंडित और अपास्त करने की प्रार्थना करते हुए, वाद फाइल नहीं

---

[1] (1999) 3 एस. सी. सी. 573.

करने से वादी का वाद विफल नहीं होता है और उसका परिणाम, प्रतिवादी के विरुद्ध नहीं जा सकता है ।

5.13 उपर्युक्त निवेदनों को करते हुए और इस न्यायालय के विनिश्चयों का अवलंब लेते हुए, वर्तमान अपील को मंजूर करने और उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश को अभिखंडित और अपास्त करने तथा वाद खारिज करते हुए, विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को पुन: बहाल करने की प्रार्थना की गई है ।

6. वर्तमान अपील का नए तौर पर जोड़े गए प्रत्यर्थियों (मूल वादी की पत्नी और पुत्र) के विद्वान अधिवक्ता सुश्री के. वी. भारती उपाध्याय द्वारा जोरदार विरोध किया गया ।

6.1 मुकदमा लड़ने वाले प्रत्यर्थियों के विद्वान् अधिवक्ता सुश्री के. वी. भारती द्वारा यह जोरदार निवेदन किया गया कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय ने सही ही वाद को डिक्री किया है और यह सही ही अभिनिर्धारित किया है कि मूल वादी यह घोषणा करने का हकदार है कि वह रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख के अधीन वाद संपत्ति का स्वामी हो गया था ।

6.2 मुकदमा लड़ने वाले प्रत्यर्थियों के विद्वान् अधिवक्ता सुश्री के. वी. भारती द्वारा यह जोरदार निवेदन किया गया कि साक्ष्यों का मूल्यांकन करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि मूल वादी के पक्ष में एक रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख था, इसलिए, उच्च न्यायालय, दोनों निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने में सही था क्योंकि उक्त निष्कर्ष अनुचित थे ।

6.3 मुकदमा लड़ने वाले प्रत्यर्थियों के विद्वान् अधिवक्ता सुश्री के. वी. भारती द्वारा यह जोरदार निवेदन किया गया कि इस प्रकार, उच्च न्यायालय ने विधि का सारवान् प्रश्न विरचित किया था और उसके पश्चात्, विरचित विधि के सारवान् प्रश्न का उत्तर दिया था और इसलिए, उच्च न्यायालय ने विधि के अधीन अनुज्ञेय अपनी अधिकारिता के बाहर कार्य नहीं किया और विशिष्टतया, उसने सिविल प्रक्रिया संहिता,

1908 की धारा 100 के मापदंडों के भीतर अधिकारिता का प्रयोग किया है ।

6.4 मुकदमा लड़ने वाले प्रत्यर्थियों के विद्वान् अधिवक्ता सुश्री के. वी. भारती द्वारा यह जोरदार निवेदन किया गया कि इस प्रकार, विक्रय प्रतिफल के संदाय पर मूल वादी के पक्ष में एक रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख निष्पादित हुआ था और वास्वत में, उस पर कार्रवाई हुई थी और रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख के अधीन और उसके अनुसरण में कब्जा सौंपा गया था और इसलिए, उच्च न्यायालय ने सही ही यह अभिनिर्धारित किया है कि मूल वादी तारीख 22 जून, 1964 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख (प्रदर्श पी-1) के अनुसरण में पूर्ण स्वामी हो गया है ।

6.5 मुकदमा लड़ने वाले प्रत्यर्थियों के विद्वान् अधिवक्ता सुश्री के. वी. भारती द्वारा यह जोरदार निवेदन किया गया कि वस्तुतः, प्रश्नगत वाद संपत्ति का तारीख 22 जून, 1964 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख (प्रदर्श पी-1) द्वारा जो वादी के साथ उसके दो भाइयों और उनके पिता नजप्पा द्वारा भी हस्ताक्षरित था, सिद्दालिंगप्पा के पक्ष में विक्रय हुआ था । इसलिए, सिद्दालिंगप्पा पूर्ण स्वामी हो गया था और इसके पश्चात्, वादी ने उपर्युक्त सिद्दालिंगप्पा से वाद संपत्ति को तारीख 18 मई, 1973 (प्रदर्श पी-2) के रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख के अधीन क्रय किया था । इसलिए, यह निवेदन किया कि वादी, तारीख 18 मई, 1973 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख (प्रदर्श पी-2) के अधीन वाद संपत्ति का पूर्ण स्वामी हो गया है ।

6.6 मुकदमा लड़ने वाले प्रत्यर्थियों के विद्वान् अधिवक्ता सुश्री के. वी. भारती द्वारा यह जोरदार निवेदन किया गया कि तारीख 22 जून, 1964 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख (प्रदर्श पी-1) को सांकेतिक विक्रय विलेख नहीं कहा जा सकता है, जैसा कि उच्च न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है ।

6.7 मुकदमा लड़ने वाले प्रत्यर्थियों के विद्वान् अधिवक्ता सुश्री के. वी. भारती द्वारा यह भी निवेदन किया गया कि किसी भी दशा में, किसी व्यक्ति ने न तो तारीख 22 जून, 1964 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख (प्रदर्श पी-1) अथवा न ही तारीख 18 मई, 1973 के पश्चात्वर्ती

रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख (प्रदर्श पी-2) को चुनौती दी है । यह निवेदन किया कि प्रत्यर्थियों में से किसी ने भी पूर्वोक्त दोनों रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेखों को चुनौती नहीं दी है । इसलिए, यह निवेदन किया कि पूर्वोक्त विक्रय विलेखों विशिष्टतया, तारीख 18 मई, 1973 के विक्रय विलेख (प्रदर्श पी-2) के संबंध में, किसी चुनौती के अभाव में और संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 54 पर विचार करते हुए, मूल वादी, रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख (विलेखों) के अनुसरण में पूर्ण स्वामी हो गया है ।

6.8 मुकदमा लड़ने वाले प्रत्यर्थियों के विद्वान् अधिवक्ता सुश्री के. वी. भारती द्वारा यह भी निवेदन किया गया कि तारीख 23 अप्रैल, 1971 का तथाकथित विभाजन विलेख (प्रदर्श डी-4) को सही ही साक्ष्य में ग्राह्य होना नहीं अभिनिर्धारित किया गया है क्योंकि वह अरजिस्ट्रीकृत था । यह भी निवेदन किया कि प्रदर्श डी-4 को संपत्ति विभाजन की सूची होना नहीं कहा जा सकता है । यह निवेदन किया कि प्रदर्श डी-4 एक विभाजन विलेख है और इसलिए, उसका रजिस्ट्रीकृत होना अपेक्षित था । यह निवेदन किया कि क्योंकि वह अरजिस्ट्रीकृत था, इसलिए, उच्च न्यायालय द्वारा यह सही ही अभिनिर्धारित किया गया है कि वह साक्ष्य में ग्राह्य नहीं था । यह इसलिए, यह निवेदन किया कि उच्च न्यायालय ने तारीख 23 अप्रैल, 1971 के तथाकथित विभाजन विलेख (प्रदर्श डी-4) पर विचार सही ही नहीं किया है ।

6.9 मुकदमा लड़ने वाले प्रत्यर्थियों के विद्वान् अधिवक्ता सुश्री के. वी. भारती द्वारा यह भी निवेदन किया गया कि अन्यथा भी और तारीख 22 जून, 1964 के पूर्ववर्ती विक्रय विलेख (प्रदर्श पी-1) को ध्यान में रखते हुए, जिसके द्वारा वाद संपत्ति को वादी के साथ उसके दोनों भाइयों और उसके पिता नजप्पा द्वारा सिद्दालिंगप्पा के पक्ष में विक्रय किया गया था, तारीख 23 अप्रैल, 1971 के अभिकथित विभाजन के समय पर, वाद संपत्ति विभाजन के लिए उपलब्ध नहीं थी । यह निवेदन किया गया कि इसलिए, अन्यथा भी तारीख 23 अप्रैल, 1971 को तथाकथित विभाजन के समय पर क्योंकि संपत्ति का पहले ही विक्रय हो चुका था, इसलिए, वह विभाजन के अध्यधीन नहीं हो सकती थी और इसलिए, कृषनप्पा तारीख 23 अप्रैल, 1971 के अभिकथित विभाजन के

अनुसरण में वाद संपत्ति में कोई हित अर्जित नहीं कर सकता था ।

6.10 पूर्वोक्त निवेदनों को करते हुए, वर्तमान अपील को खारिज करने की प्रार्थना की गई है ।

7. क्रमशः, पक्षकारों के विद्वान् अधिवक्ताओं को विस्तारपूर्वक सुना गया ।

7.1 आरंभ में ही, यह उल्लिखित किया जाना अपेक्षित है कि द्वितीय अपील में आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए, उच्च न्यायालय ने दोनों निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित तथ्यों के निष्कर्षों को अपास्त कर दिया है । विद्वान् विचारण न्यायालय ने वाद खारिज कर दिया था और उसकी विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय द्वारा पुष्टि कर दी गई थी । द्वितीय अपील मंजूर करते हुए, उच्च न्यायालय ने मात्र एक विधि का सारवान् प्रश्न विरचित किया था जो इस प्रकार है :-

> "क्या अपीलार्थी स्वामी है और वाद भूमि के कब्जे में है क्योंकि उसने इसे वर्ष 1973 में क्रय किया था, जो तारीख 23 अप्रैल, 1971 के पश्चात्वर्ती है जब प्रदर्श डी-1 – विभाजन विलेख – पालुपति का अस्तित्व में होना अभिकथित है ?"

कोई अन्य विधि का सारवान् प्रश्न विरचित नहीं हुआ था । हमें शंका है कि पूर्वोक्त प्रश्न को किसी भी प्रकार से विधि का सारवान् प्रश्न कहा जा सकता है । यह विवादित नहीं हो सकता है और कतिपय विनिश्चयों में इस न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि के अनुसार भी वर्ष 1976 के संशोधन के पश्चात् सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील ग्रहण करने की उच्च न्यायालय की अधिकारिता द्वितीय अपील में अंतर्वलित विधि के सारवान् प्रश्न तक ही सीमित है । 'विधि का सारवान्' का अस्तित्व में होना, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए अनिवार्य है ।

7.2 जैसा कि इस न्यायालय द्वारा **कोंडिबा दगदू कदम** बनाम **सावित्री बाई सोपान गुजर**[1] वाले मामले में, मत व्यक्त किया गया है और अभिनिर्धारित किया गया है कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील में, उच्च न्यायालय, प्रथम अपील न्यायालय के निर्णय में स्वयं अपनी राय प्रतिस्थापित नहीं कर सकता है जब तक कि उसका यह निष्कर्ष नहीं हो कि निचले न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष इस नाते त्रुटिपूर्ण हैं कि :–

(i) लागू विधि के आज्ञापक उपबंधों के प्रतिकूल है, अथवा

(ii) उच्चतम न्यायालय द्वारा यथाउद्घोषित विधि के प्रतिकूल है, अथवा

(iii) अग्राह्य साक्ष्य या किसी भी साक्ष्य पर आधारित नहीं है ।

पूर्वोक्त विनिश्चय में इस न्यायालय द्वारा यह भी मत व्यक्त किया गया है कि यदि प्रथम अपील न्यायालय ने न्यायिक तरीके से अपने विवेकाधिकार का प्रयोग किया है तो उसके विनिश्चय को या तो विधि की त्रुटि या द्वितीय अपील में हस्तक्षेप करने की अपेक्षित प्रक्रिया से ग्रसित होना अभिलिखित नहीं किया जा सकता है । यह भी मत व्यक्त किया गया है कि विचारण न्यायालय विभिन्न तौर पर विनिश्चय कर सकता है जिसे द्वितीय अपील में हस्तक्षेप करने को न्यायोचित ठहराने के लिए विधि का प्रश्न नहीं कहा जा सकता है ।

7.3 कब विधि का सारवान् प्रश्न उद्भूत होना कहा जा सकता है, इस न्यायालय द्वारा **ईश्वर दास जैन** बनाम **सोहन लाल**[2] वाले मामले में विचार किया गया । पूर्वोक्त विनिश्चय में इस न्यायालय ने विनिर्दिष्टत: निम्नलिखित मत व्यक्त किया और अभिनिर्धारित किया :–

"सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन, वर्ष 1976 के संशोधन के पश्चात् उच्च न्यायालय के लिए विधि का सारवान् प्रश्न विरचित करना आवश्यक है और ऐसा किए बिना

---

[1] (1999) 3 एस. सी. सी. 722.

[2] (2002) 1 एस. सी. सी. 434.

प्रथम अपील न्यायालय के निर्णय का अनुज्ञेय नहीं है । दो परिस्थितियां हैं, जिनमें तथ्य के निष्कर्षों को हस्तक्षेप करना अनुज्ञेय है । प्रथम यह है कि जब तात्विक या सुसंगत साक्ष्य पर विचार नहीं किया गया है, जिस पर, यदि विचार किया जाता तो प्रतिकूल निष्कर्ष निकल सकता था । द्वितीय परिस्थिति वह है जिसमें तथ्य के निष्कर्षों में हस्तक्षेप करना अनुज्ञेय है कि जहां अपील न्यायालय द्वारा निष्कर्ष, अग्राह्य साक्ष्य का अवलंब लेते हुए निकला गया है, जिसका यदि लोप किया जाता तो प्रतिकूल निष्कर्ष निकलना संभाव्य था । उपर्युक्त दोनों परिस्थितियों में ही विधि का सारवान् प्रश्न उद्भूत हो सकता है ।"

7.4 पूर्वोक्त विनिश्चयों में यह न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि पर विचार करते हुए और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 पर भी विचार करते हुए, वर्तमान मामले में, उच्च न्यायालय द्वारा इस प्रकार विरचित विधि का सारवान् प्रश्न, किसी भी प्रकार से विधि का सारवान् प्रश्न नहीं कहा जा सकता है ।

8. विचारण न्यायालय के साथ ही प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों का परिशीलन करने से यह प्रतीत होता है कि दोनों विचारण न्यायालय के साथ ही प्रथम अपील न्यायालय ने अभिलेख पर के साक्ष्य का मूल्यांकन करते हुए तर्कपूर्ण कारण दिए हैं, विशिष्टतया, तारीख 22 जून, 1964 के विक्रय विलेख (प्रदर्श पी-1) तारीख 23 अप्रैल, 1971 का दस्तावेज (प्रदर्श डी-4) और तारीख 18 मई, 1973 का पश्चात्वर्ती विक्रय विलेख (प्रदर्श पी-2) और इसके पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया है कि वादी यह घोषणा पाने का हकदार नहीं है कि वह स्वामी हो गया है । दोनों निचले न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री में हस्तक्षेप करने से, यह प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने पुन: अभिलेख पर के संपूर्ण साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन किया है जो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए, उसे अनुज्ञेय नहीं है । इन परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय ने दोनों निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों को अभिखंडित और अपास्त करने में गंभीर/प्रकट त्रुटि कारित की है, जो अभिलेख पर के साक्ष्य के मूल्यांकन पर आधारित है । उच्च न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया

संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए, अपनी अधिकारिता के बाहर कार्य किया है ।

9. अन्यथा भी, गुणागुणों पर भी अपील मंजूर करते हुए, उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश और परिणामत: वाद डिक्री करने को कायम नहीं रखा जा सकता है । मूल वादी का पक्षकथन यह था कि वाद संपत्ति का विक्रय तारीख 22 जून, 1964 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख (प्रदर्श पी-1) द्वारा वादी के साथ उसके दोनों भाइयों और उनके पिता नजप्पा ने सिद्दालिंगप्पा के पक्ष में किया था तत्पश्चात्, जिससे (सिद्दालिंगप्पा से) वादी ने तारीख 18 मई, 1973 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख (प्रदर्श पी-2) के अधीन वाद संपत्ति का क्रय किया था । दूसरी ओर, प्रतिवादियों का यह विनिर्दिष्ट पक्षकथन है कि तारीख 22 जून, 1964 का विक्रय विलेख एक सांकेतिक विक्रय विलेख था और उस पर कभी भी कार्रवाई नहीं हुई थी और इस प्रकार, उस पर किसी भी प्रकार से कार्य नहीं किया जा सकता था । प्रतिवादियों का यह भी पक्षकथन था कि इसके पश्चात् वर्ष 1971 में विभाजन हुआ था और उसे तारीख 23 अप्रैल, 1971 के दस्तावेज (प्रदर्श डी-4) के द्वारा लिखित में लेखबद्ध किया गया था और उस दस्तावेज के अधीन यह अभिलिखित किया गया था कि वाद संपत्ति कृषनप्पा के पक्ष में चली गई थी । वादी ने लिखित में लेखबद्ध किसी विभाजन से इनकार किया, विशिष्टतया, तारीख 23 अप्रैल, 1971 के प्रदर्श डी-4 के प्ररूप में । उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया और यह अभिनिर्धारित किया कि वादी के पक्ष में निष्पादित रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख को ध्यान में रखते हुए, वादी असली स्वामी हो गया है । उच्च न्यायालय ने अपील मंजूर कर लिया और तत्पश्चात् मुख्यत:, निम्नलिखित आधारों पर वाद डिक्री कर दिया :–

(i) कि तारीख 22 जून, 1974 का रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख (प्रदर्श पी-1) हुआ था और वह एक सांकेतिक विक्रय विलेख नहीं था ।

(ii) कि प्रतिवादियों ने तारीख 22 जून, 1964 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख (प्रदर्श पी-1) और तारीख 18 मई, 1973 के पश्चात्वर्ती

रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख (प्रदर्श पी-2) को भी कभी भी चुनौती नहीं दी है ।

(iii) प्रदर्श डी-4 - तारीख 23 अप्रैल, 1971 का विभाजन विलेख, कृषनप्पा के पक्ष में अचल संपत्ति में हित के अंतरण से तात्पर्यित है और यह कि इसलिए, उसे रजिस्ट्रीकृत होना अपेक्षित था और इस प्रकार, यह एक अरजिस्ट्रीकृत दस्तावेज था और इसलिए, रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए, यह साक्ष्य में ग्राह्य नहीं है और इसलिए, इसे विचार में नहीं लिया जा सकता है ।

9.1 अब, जहां तक रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख (प्रदर्श पी-1) का संबंध है, यह एक स्वीकृत प्रास्थिति है कि कृषनप्पा उक्त विक्रय विलेख का एक हस्ताक्षरकर्ता नहीं है । इसलिए, इस प्रकार, उक्त विक्रय विलेख कृषनप्पा पर आबद्धकर नहीं है । मूल वादी ने प्रतिपरीक्षा में भी यह स्वीकार किया है कि प्रदर्श पी-1 पर कृषनप्पा ने हस्ताक्षर नहीं किया था । उसने यह भी स्वीकार किया है कि उसके अन्य भाइयों रंगप्पा और गोविंदैय्या ने भी हस्ताक्षर नहीं किए थे । अभिलेख पर के संपूर्ण साक्ष्य से, यह प्रतीत होता है कि वाद संपत्ति, आरंभत: वर्ष 1948 में कृषनप्पा द्वारा क्रय की गई थी और उसके पश्चात् उक्त वाद संपत्ति के संबंध में कुछ आंतरिक कुटुम्ब समस्याओं के कारण कृषनप्पा ने ही वर्ष 1952 में उस संपत्ति को संयुक्त कुटुम्ब संपत्ति में सम्मिलित कर लिया था और कृषनप्पा ने अपने पिता ननजप्पा के पक्ष में विक्रय विलेख निष्पादित किया था, यह कथन करते हुए कि यह संयुक्त कुटुम्ब संपत्ति से संबंधित है । अभिलेख पर के संपूर्ण साक्ष्य से, यह प्रतीत होता है कि विक्रय विलेख प्रदर्श पी-1 पर भी कार्रवाई नहीं हुई थी । वर्ष 1964 से वर्ष 1971 के बीच सिद्दालिंगप्पा का नाम राजस्व अभिलेख में नामांतरित/अभिलिखित नहीं हुआ था । दोनों निचले न्यायालयों ने पूर्वोक्त पहलू पर सविस्तार विचार किया था जिसे उच्च न्यायालय द्वारा उलट दिया गया है । यह उल्लिखित किया जाना अपेक्षित है कि मूल वादी प्रतिपरीक्षा में भी तारीख 22 जून, 1964 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख (प्रदर्श पी-1) को ध्यान में रखते हुए, पारिश्रमिक के रूप में सिद्दालिंगप्पा से प्राप्त विक्रय प्रतिफल के बारे में निश्चित नहीं था ।

अन्यथा भी, वादी के अनुसार भी और अभिलेख पर के सामग्रियों पर विचार करने से भी क्योंकि वाद भूमि एक संयुक्त संपत्ति थी और/अथवा ननजप्पा के नाम में थी, इसलिए, सभी भाइयों का उसमें समान हिस्सा था और इसलिए, ननजप्पा द्वारा वादी और अन्य दो भाइयों और अन्य भाइयों जिनमें कृषनप्पा सम्मिलित है, की सहमति के बिना वाद संपत्ति का विक्रय नहीं किया जा सकता था जब तक कि संपत्ति का विभाजन नहीं हो जाता । मूल वादी ने प्रतिपरीक्षा में विनिर्दिष्टत: यह स्वीकार किया है कि वर्ष 1965-66 में, जब उसके पिता ने उक्त वाद अनुसूचित संपत्ति का विक्रय किया था तब उस समय पर उसके भाइयों के बीच विभाजन नहीं हुआ था । इन परिस्थितियों में, तारीख 22 जून, 1964 का रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख (प्रदर्श पी-1) जिसके द्वारा वाद संपत्ति का विक्रय सिद्दालिंगप्पा को की गई थी, कृषनप्पा पर आबद्धकर नहीं हो सकती है । यह एक ऐसा रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख था जिस पर कोई कार्रवाई नहीं हुई थी । वादी और सिद्दालिंगप्पा ने भी वर्ष 1973 में सिद्दालिंगप्पा के नाम में नामांतरण कराने की कोशिश की थी जो राजस्व प्राधिकारी की विषयवस्तु थी ।

9.2 अब, जहां तक वादी की इस निवेदन का संबंध है कि क्योंकि तारीख 22 जून, 1964 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख (प्रदर्श पी-1) को वाद या प्रतिदावा के माध्यम से भी प्रतिवादी द्वारा चुनौती नहीं दी गई थी और इसलिए, इसके पश्चात्, उसे चुनौती देने के लिए प्रतिवादियों के पास कोई विकल्प खुला नहीं है, जहां तक उसका संबंध है, प्रारंभ में ही यह उल्लिखित किया जाना अपेक्षित है और जैसा इसमें उपर्युक्त मत व्यक्त किया गया है, कृषनप्पा उक्त दस्तावेज/विक्रय विलेख का हस्ताक्षरकर्ता नहीं था और इसलिए, यह उस पर या उसके उत्तराधिकारियों पर आबद्धकर नहीं हो सकता है । अन्यथा भी, और जैसा कि वादी द्वारा रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख के आधार पर घोषणा करने के लिए फाइल वाद, **विद्याधर** (उपर्युक्त) वाले मामले में, इस न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है कि उस प्रतिवादी, जो विक्रय विलेख में पर-व्यक्ति है, के लिए यह हमेशा ही खुला होता है कि वह यह अभिवाक् उद्भूत कर सकता है कि विक्रय विलेख शून्य, तुच्छ, दुरभिसंधि पूर्ण है या उस पर कार्रवाई नहीं करने का आशय है और/या

उस पर आबद्धकर नहीं है । पूर्वोक्त विनिश्चय में, इस न्यायालय द्वारा यह मत व्यक्त किया गया है और यह अभिनिर्धारित किया गया है कि एक व्यक्ति, एक प्रतिवादी के रूप में अपनी हैसियत में, वादी के वाद को विफल करने के लिए विधि के अधीन उसे उपलब्ध कोई भी विधिसम्मत अभिवाक् उद्भूत कर सकता है । इस न्यायालय ने पैरा 21 में यह मत व्यक्त किया है और निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :-

> "21. उपर्युक्त विनिश्चय इस सिद्धांत पर आधारित होना प्रतीत होते हैं कि एक व्यक्ति एक प्रतिवादी के रूप में अपनी हैसियत में वादी के वाद को विफल करने के लिए विधि के अधीन उसे उपलब्ध कोई भी विधिसम्मत अभिवाक् उद्भूत कर सकता है । इसमें यह अभिवाक् भी सम्मिलित होगा कि विक्रय विलेख, जिसके द्वारा संपत्ति में हक वादी को हस्तांतरित होना आशयित था, शून्य या तुच्छ या उस मामले के लिए दुरभिसंधि पूर्ण था और उस पर कार्रवाई किया जाना आशयित नहीं था । इस प्रकार, संपूर्ण प्रश्न पक्षकारों के अभिवचनों, वाद की प्रकृति, विलेख की प्रकृति, वाद में पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य और अन्य तत्संबद्ध परिस्थितियों पर निर्भर होता है । उदाहरण के लिए, मकान मालिक - किराएदार के मामले में, जहां मकान मालिक का संपत्तियों पर कब्जा है और संपत्तियों में से किसी एक संपत्ति से सद्भाविक आवश्यकता के आधार पर अपने किराएदार की बेदखली की ईप्सा संभाव्य रूप से नहीं कर सकता है, मकान मालिक प्रकट रूप से उस व्यक्ति को वह संपत्ति अंतरित कर सकता है जिसके कब्जे में कोई अन्य संपत्ति नहीं है जिससे कि वह व्यक्ति अर्थात् अंतरिती अपनी असली आवश्यकता के आधार पर बेदखली की कार्यवाहियां संस्थित कर सकता है और इस प्रकार उस किराएदार को बेदखल कर सकता है जिसे अन्यथा बेदखल नहीं किया जा सकता था । इस परिस्थिति में, विलेख जिसके द्वारा संपत्ति अंतरित किया जाना आशयित था, एक मिथ्या संव्यवहार के अधीन दुरभिसंधि विलेख होगा, जिस पर कभी भी कार्रवाई किया जाना आशयित नहीं था । यह किराएदार के लिए प्रतिवादी के रूप में अपनी हैसियत में इस अभिवाक् का प्राख्यान करने और उसे साबित करने के लिए खुला होगा कि

> विलेख तुच्छ था और दुरभिसंधि प्रकृति का था । इसलिए, हम **लाल अचल राम** [(1905) 32 आई. ए. 113 = आई. एल. आर. 27 इला. 271] वाले मामले में, प्रिवी काउंसेल द्वारा अभिव्यक्त मत का समर्थन नहीं कर सकते हैं जिसमें स्पष्ट निबंधनों में यह मत व्यक्त किया गया है अपितु, कलकत्ता, पटना और उड़ीसा उच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि जैसा कि उपर्युक्त इंगित किया गया है का अनुमोदन करते हैं ।"

इसलिए, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, हमारी यह राय है कि स्वतंत्र कार्यवाहियों के माध्यम से विक्रय विलेख (प्रदर्श पी-1) को चुनौती दिए बिना भी वादी द्वारा फाइल वाद में, यह घोषणा करने की ईप्सा की जा सकती है कि वह रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख के अनुसरण में, स्वामी हो गया है, उस प्रतिवादी जो विक्रय विलेख में पर-व्यक्ति है, के लिए यह हमेशा ही खुला होता है कि वह यह अभिवाक् उद्भूत कर सके कि विक्रय विलेख उस पर आबद्धकर नहीं है या वह बिना प्रतिफल के है या वह एक सांकेतिक विक्रय विलेख था अथवा शून्य या तुच्छ, उस मामले के लिए दुरभिसंधि पूर्ण था और उस पर कार्रवाई किया जाना आशयित नहीं था ।

9.3 अब, जहां तक उच्च न्यायालय द्वारा अभिलिखित इस निष्कर्ष का कि क्योंकि तारीख 23 अप्रैल, 1971 का विभाजन विलेख (प्रदर्श डी-4) अरजिस्ट्रीकृत था, यद्यपि, इसका रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 के उपबंधों के अधीन रजिस्ट्रीकरण किया जाना अपेक्षित था और इसलिए, वह साक्ष्य में ग्राह्य नहीं है, का संबंध है, यह उल्लिखित किया जाना अपेक्षित है कि चूंकि प्रदर्श डी-4 को पालुपट्टी के रूप में कहा जा सकता है जैसा कि पालुपट्टी के रूप में वर्णित किया गया है । पालुपट्टी का अभिप्राय विभाजित संपत्तियों की सूची से है । अधिकतर, इसे कुटुम्ब व्यवस्थापन के रूप में कहा जा सकता है । इसलिए, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, इसे रजिस्ट्रीकृत किया जाना अपेक्षित नहीं था ।

9.4 यह उल्लिखित किया जाना अपेक्षित है कि तारीख 23 अप्रैल, 1971 का विलेख जिसके अधीन वाद संपत्ति कृष्णप्पा के पक्ष में गई थी/न्यायगत हुई थी, पंचायत और पंचों के समक्ष लिखित में लेखबद्ध

किया गया था और उस पर ग्रामवालों/पंचायतवालों और कुटुम्ब के सभी सदस्यों, जिसमें वादी भी सम्मिलित था, द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे । यद्यपि, वादी ने यह विवादित किया है कि विभाजन, दस्तावेज प्रदर्श डी-4 के प्ररूप में लिखित में लेखबद्ध नहीं हुआ था, जो अभिलेख पर के संपूर्ण साक्ष्यों पर विचार करने और वादी के अभिसाक्ष्य (प्रतिपरीक्षा) से भी जिसमें उसने यह विनिर्दिष्टत: स्वीकार किया है कि वर्ष 1971 में मौखिक विभाजन हुआ था, से स्पष्ट होता है । उसने यह भी स्वीकार किया है कि उसने वह हिस्सा प्राप्त किया है जिसका वर्णन तारीख 23 अप्रैल, 1971 के दस्तावेज (प्रदर्श डी-4) में किया गया है । तारीख 23 अप्रैल, 1971 के दस्तावेज/विभाजन विलेख/पालुपट्टी के निष्पादन को विभिन्न साक्षियों की परीक्षा द्वारा सिद्ध और साबित किया गया है । उच्च न्यायालय ने तारीख 23 अप्रैल, 1971 के उक्त दस्तावेज (प्रदर्श डी-4) को देखने और/या विचार करने से एकमात्र इस आधार पर इनकार कर दिया था कि इसका रजिस्ट्रीकरण किया जाना अपेक्षित था और इसलिए, क्योंकि यह अरजिस्ट्रीकृत है, इसलिए, इस पर विचार नहीं किया जा सकता है तथापि, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा **काले** (उपर्युक्त) वाले मामले में, मत व्यक्त किया गया है कि ऐसा कुटुम्ब व्यवस्थापन, यद्यपि, रजिस्ट्रीकृत नहीं है, तो भी वह ऐसे कुटुम्ब व्यवस्थापन के पक्षकारों के विरुद्ध पूर्णत: विबंधन के रूप में प्रवर्तित होगा । पूर्वोक्त विनिश्चय में, इस न्यायालय ने अपने पूर्ववर्ती **एस. शानमुगम पिल्लई और अन्य** बनाम **के. शानमुगम पिल्लई और अन्य**[1] वाले मामले पर विचार किया जिसमें निम्नलिखित मत व्यक्त किया गया था :–

> "13. साम्यिक सिद्धांतों जैसे विबंधन, निर्वाचन, कुटुम्ब व्यवस्थापन इत्यादि मात्र साक्ष्य के तकनीकी नियम नहीं हैं । वे न्याय प्रशासन करने के महत्वपूर्ण परियोजन हैं । विधि का अंततोगत्वा उद्देश्य न्याय सुनिश्चित करना है । वर्तमान समय में, पक्षकारों के बीच न्याय प्रदान करने के अनुक्रम में, न्यायालयों को उन सिद्धांतों का अवलंब लेने की स्वतंत्रता दी गई है । हमें इनके

---

[1] (1973) 2 एस. सी. सी. 312.

क्षेत्र को कम करने में हिचकिचाहट होगी ।

जैसा कि इस न्यायालय द्वारा टी. वी. आर. सुब्बू चेट्टीज फैमिली चैरिटिज वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा मत व्यक्त किया गया है कि यदि किसी व्यक्ति को उस संव्यवहार में संभाव्य उत्तरभोगी के रूप में अपने अधिकार की पूर्ण जानकारी है जो सुसंगत समय पर विरोधियों के दावे के साथ ही उसके दावे का निपटारा करता है तो उसे उस करार से पीछे नहीं हटने दिया जाएगा जब कि उत्तरभोग वस्तुतः, खोला जाता है ।"

9.5 जैसा कि **सुब्राय एम. एन.** (उपर्युक्त) वाले मामले में, इस न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है कि कुटुम्ब बंदोबस्त/कुटुम्ब व्यवस्थापन के लिखित दस्तावेज के रजिस्ट्रीकरण के बिना भी उसके अधीन किए गए व्यवस्थापन और पक्षकारों के आचरण को स्पष्टीकरण करने के लिए संपोषक साक्ष्य के रूप में प्रयोग किया जा सकता है । जैसा कि इसमें उपर्युक्त मत व्यक्त किया गया है कि वादी ने भी सुस्पष्टतः यह स्वीकार किया है कि तारीख 23 अप्रैल, 1971 को मौखिक विभाजन हुआ था और उसने यह भी स्वीकार किया है कि तीन से चार पंचायत के लोग भी उपस्थित थे । तथापि, उसके अनुसार, उसे लिखित में लेखबद्ध नहीं किया गया था । इसलिए, वादी के इस पक्षकथन को स्वीकार करते हुए भी कि तारीख 23 अप्रैल, 1971 का एक मौखिक विभाजन हुआ था जो तारीख 23 अप्रैल, 1971 का दस्तावेज प्रदर्श डी-4 है, जिसका वह भी हस्ताक्षरकर्ता है और अन्य सभी कुटुम्ब सदस्य भी उसके हस्ताक्षरकर्ता हैं, को संपत्तियों के विभाजन की सूची के रूप में कहा जा सकता है । प्रत्येक व्यक्ति, मौखिक विभाजन/विभाजन के अनुसार ही अधिकार/हिस्से प्राप्त करता है । इसलिए, उसका भी उसके अधीन व्यवस्थापन और पक्षकारों के आचरण को स्पष्टीकरण करने के लिए संपोषक साक्ष्य के रूप में प्रयोग किया जा सकता है । इसलिए, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय ने तारीख 23 अप्रैल, 1971 के दस्तावेज प्रदर्श डी-4 का परिशीलन नहीं करके और विचार नहीं करके गंभीर त्रुटि कारित की है ।

9.6 जहां तक सिद्दालिंगप्पा द्वारा वादी के पक्ष में निष्पादित

तारीख 18 मई, 1973 के विक्रय विलेख (प्रदर्श पी-2) का संबंध है, जैसा कि दोनों निचले न्यायालयों ने यह सुस्पष्टत: निष्कर्ष निकाला है कि वह दस्तावेज मिथ्या है । यह उल्लिखित किया जाना अपेक्षित है प्रतिपरीक्षा में, वादी ने यह कथन किया है कि उसने सिद्दालिंगप्पा को 3,000/- रुपए से 4,000/- रुपए संदत्त किया था और उक्त संपत्ति को उसके द्वारा वर्ष 1973 में क्रय की गई थी । तथापि, दस्तावेज में विक्रय प्रतिफल को 200/- रुपए कहा गया है । अभि. सा. 2 सिद्दालिंगप्पा ने भी यह कथन किया है कि उसने 200/- रुपए में वाद अनुसूचित संपत्ति क्रय की थी और उसने 600/- रुपए में उक्त वाद अनुसूचित संपत्ति का विक्रय कर दिया था । इसलिए, वादी द्वारा संदत्त प्रतिफल और सिद्दालिंगप्पा द्वारा प्राप्त प्रतिफल के संबंध में एक गंभीर विवाद है ।

10. मामले के पूर्वोक्त तथ्यों और परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय, दोनों निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने में न्यायोचित नहीं था । उपर्युक्त कथित कारणों से, उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश को कायम नहीं रखा जा सकता है और वह अभिखंडित और अपास्त किए जाने योग्य है और तद्नुसार, उसे अभिखंडित और अपास्त किया जाता है । तद्द्वारा, वाद खारिज करते हुए, दोनों निचले न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश को बहाल किया जाता है और परिणामत:, मूल वादी द्वारा फाइल वाद को खारिज किया जाता है । खर्चे का कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

क.